अथेश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥१॥ यजु. अ. ३० मं.

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिये (यद्) जो (भद्रं) कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आसुवः) प्राप्त कीजिये ॥१॥

ओं हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यजु० अ० १३ मं० ४

अर्थ-(हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और जिस ने प्रकाश करनेवाले सूर्य्य चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि को (उत) और (द्याम्) सूर्य्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छाया ऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यजु० अ० २५। मं० १३ ॥

अर्थ-(यः) जो (आत्मदा) आत्म-ज्ञान का दाता

(वलदा) शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिस की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषं) प्रसन्न सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिस का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् आज्ञापालन में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

यजु० अ० २३. मं० ३

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी

अनन्त महिमा से (एक, इत्) एकही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है। हम उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य्य के देनेहारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥४॥

ओं येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥

य० अ० ३२। मं० ६

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाववाले (द्यौः) सूर्य्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण, और (येन) जिस ईश्वर ने [नाकः] दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो [अन्तरिक्षे] आकाश में [रजसः] सब लोकलोकान्तरों

को [विमानः] विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस [कस्मै] सुख-दायक [देवाय] कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये [हविषा] सब सामर्थ्य से [विधेम] विशेष भक्ति करें ॥

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहु-मस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६

ऋ॰ मं॰ १० सू॰ १२१ मं॰ १०

अर्थ—हे [प्रजापते] सब प्रजा के स्वामी परमात्मन्! [त्वत्] आप से [अन्यः] भिन्न दूसरा कोई [ता] उन [एतानि] इन [विश्वा] सब [जातानि] उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को [न] नहीं [परि, बभूव] तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं [यत्, कामाः] जिस २ पदार्थ की कामना वाले हुए हम लोग [ते] आपका [जुहुमः] आश्रय लेवें और वाञ्छा करें [तत्]

उस २ की कामना [नः] हमारी सिद्ध [अस्तु] होने जिस से [वयम्] हम लोग [रयीणाम्] धन ऐश्वर्यों के [पतयः] स्वामी [स्याम] होवें ॥६॥

ओं स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७

यजु० अ० ३२ मं० १०

अर्थ—हे मनुष्यो ! [सः] वह परमात्मा [नः] अपने लोगों को [बन्धुः] भ्राता के समान सुखदायक [जनिता] सकल जगत् का उत्पादक [सः] वह [विधाता] सब कामनाओं को पूर्ण करनेहारा [विश्वा] सम्पूर्ण [भुवनानि] लोकमात्र और (धामानि) नाम स्थान और जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करनेहारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं । वही परमात्मा

अपना गुरु आचार्य राजा और न्यायाधीश है । अपने लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें ॥७॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

य० अ० ४० मं० १६

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिस से (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं, कृपा कर के (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए (सु, पथा) अच्छे धर्म युक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण [वयुनानि] ज्ञान और उत्तम कर्म [नय] प्राप्त करायें और [अस्मत्] हम से [जुहुराणं] कुटलतायुक्त [एनः] पाप रूप कर्म को [युयोधि] दूर कीजिये इस कारण हम लोग [ते] आपकी [भूयिष्ठां] बहुत प्रकार की स्तुति रूप [नमः उक्तिम्] नम्रता पूर्वक प्रशंसा [विधेम] सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥८॥

स्वस्तिवाचनम् ।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

भावार्थ—जो इस संसार का धारण कर्त्ता वांछित पदार्थों का दाता पूज्यों का पूज्य दानादि गुणयुक्त सबका ग्रहणकर्त्ता रमणीक पदार्थों का धारक अत्यन्त प्रसिद्ध अग्नि परमेश्वर है उससे हम याचना वा [स्तुति] करते हैं ॥१॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥

ऋ० मं० १ । सू० १ मं० १ । ९

भावार्थ—हे अग्ने परमेश्वर ! आप हमारे लिये पिता पुत्र के सदृश अच्छी प्रीति से युक्त हो हमारा कदापि नाश मत करो ॥२॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥

भावार्थ—द्यौ और पृथिवी का धारक परमेश्वर हम सब का मंगल करे, षड्विध ऐश्वर्य्यवान् देवी प्रकाशक अखण्डित चित्शक्ति सर्वत्र व्यापक [पूषा] पुष्टि कारक द्युलोक भूलोक यह सम्पूर्ण ज्ञानघन परमेश्वर की कृपा से हम सब के [स्वस्ति] अविनाशकारी हों ॥३॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

भावार्थ—वायु का वायु, स्वामियों का स्वामी, बड़ों का बड़ा, आदित्यों का आदित्य जो परमेश्वर है, उससे हम सब योगक्षेम के लिये प्रार्थना करते हैं॥४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निःस्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवःस्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

भावार्थ—सम्पूर्ण विद्वानों का आधार वैश्वानर अग्नि नामक तथा देव विशेष ऋभुरुद्र इन सब का वाच्य जो ईश है, उसकी कृपा से हमारे सम्पूर्ण पाप विजय को प्राप्त हों ॥५॥

स्वस्ति मित्रा वरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि

भावार्थ—सर्व मित्र सर्व सुखदाता धर्म धनस्वरूप जगत्स्रष्टा सर्व प्रकाशक हे [अदिते] अखण्डित स्वरूप परमेश्वर आप हमारा मंगल करें ॥६॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्य्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥

ऋ० मं० ५ सू० ५१

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आपकी दया दृष्टि से सूर्य्य चन्द्रमा के समान अच्छे मार्ग में आपका स्मरण करते हुये हम सब आनन्द मंगल पूर्वक विहार करें अनेक देश देशान्तरों में दान तथा स्वधर्म रक्षा करते हुये निज बन्धुजनों से पुनः सम्मिलित हों ॥७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा
अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगाय-
मद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

ऋ० मं० ७ सू० ३५ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप के अनुग्रह से पूज्य देवों के पूजनीय तथा मननशील मनु के भी याजक मरण रहित सत्य के ज्ञाता जो देव हैं वे सम्पूर्ण विपुल कीर्तियुक्त पुत्रादि पदार्थों के लाभ में सहकारी तथा कल्याण युक्त पदार्थों की रक्षा में भी युक्त हों ॥ ८ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरा-न्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥ ९

भावार्थ—हे परमेश्वर ! [माता] माता पृथ्वी तथा मेघों से अत्यन्त दृढ़ [द्यौः] द्युलोक पिता ये दोनों [पीयूषम्] माधुर्य युक्त [पयः] अमृत हव्य पदार्थ को उत्पन्न करते हैं । अत्यन्त बलिष्ठ वृष्टि के दाता शोभन कर्म्म आदिति पुत्र सूर्य्य लोक हमारे सब के कल्याण कारक आपके अनुग्रह से हों ॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये० ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आपके अनुग्रह से मनुष्यों के दबानेवाले, जागरणशील, पूज्यतम, विद्वान, दीप्यमान, रथयुक्त [ज्ञानी] अकुण्ठित बुद्धिवाले पापरहित उन्नत देश को संसार के कल्याणार्थ स्वबुद्धि प्रभा से परिपूर्ण करते हैं ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये॥११

भावार्थ—स्वतेज से सम्यक् प्रकाशमान, अत्यन्त वृद्ध [देव] विद्वान सर्व प्रकार से अहिंसित होकर यज्ञ में उपस्थित होते हैं, वही सुख स्थान में निवास करते हैं, तथा गुणाधिक्य से प्रसिद्ध उन देवों को हवि-रूप अन्न से और परमेश्वर की स्तुति से तुम सब उपासना करो ॥ ११ ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन । को वोऽध्वरं तुविजाता अरंकरद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।१२।

भावार्थ—परमेश्वर देवताओं को तर्क पूर्वक उपदेश

है कि हे विद्वानो ! हे मननशील ! तुम सब की जो संख्या है उस में कौन विद्वान् स्तुति समूह का साधन करता है, जिस का तुम सब सेवन करते हो अर्थात् वेद वाक्य, वही वेद है वह जन (देवों) तुम सब को यज्ञ में अत्यन्त शोभित करता है तथा (यज्ञ पुष्कल) आनन्द के लिये वैदिकमार्ग में आप सब ये मैं प्रवृत्त करता हूं ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुःसमिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥

भावार्थ—हे जगदीश ! सम्यक् देदीप्यमान मननशीलों के उपदेशक आप ही ने विद्वानों को सप्त होताओं के द्वारा मन से प्रथम यज्ञ का उपदेश किया वही आदित्य परमेश्वर के पुत्र स्थानापन्न हम सब को निर्भय सुखदान करें तथा सुख का कारण जो मार्ग है वह भी बतावें ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! स्थावर वृक्षादि, जंगम मनुष्यादि विविध जीवों के आधार रूप सम्पूर्ण लोकों के स्वामी जो विद्वान्, सब के ज्ञाता, प्रकृष्ट ज्ञानवान्, हैं वे स्वशिक्षा वा उपदेश से कायिक, वाचिक, मानसिक पापों से बचा कर हमको सदैव आयु वृद्धि के लिये परिपूर्ण करें ॥१४॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवीमरुतः स्वस्तये ॥१५॥

भाषार्थ—पापमोचक परमैश्वर्य्यवान्, शोभन आज्ञानयुक्त परमेश्वर को हम अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं तथा अन्न लाभ और अविनाश के लिये परमेश्वर कृत अग्नि सूर्य जल ऐश्वर्य्य द्युलोक, भूमि, वायु, इनको भी स्वरक्षार्थ याचना करते हैं ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥

भावार्थ—हे स्वयम्भू अविनाश स्वरूप परमेश्वर! आप की दया से हम लोग शोभन रक्षा युक्त, पाप रहित, पृथ्वी पर, शोभन सुरथ युक्त (स्थान युक्त) परमेश्वर कृत अखण्डित सुख स्थान पर, पाप रहित नौका के सदृश द्युलोक में आनन्द के लिये आरूढ़ हों १६

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये १७

भावार्थ—हे परमेश्वर! आप की दया से सम्पूर्ण यजनशील विद्वान्, हिंसायुक्त दुर्गति से बचा कर रक्षा का उपाय दरशावें तथा शत्रुओं से रक्षा कर जीवन वृद्धि के लिये परमेश्वर की यथार्थ भूत (देवहूती) वाणी श्रवण करते हुए हम आप का आह्वान करते हैं। १७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! रोगवत् बाधक, विद्वानों के महाशत्रु, यज्ञ हवि के अदाता, लोभ बुद्धि तथा पापियों की दुष्ट बुद्धि, सम्पूर्ण द्वेष्टा, इन सब को हम से पृथक् करो और विस्तीर्ण सुख, भोग के लिये दान करो ॥१८॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ।१९।

भाषार्थ—परमेश्वर का उपदेश है, कि सम्पूर्ण मनुष्य हिंसा रहित धर्मिक प्रथम धन आदि से बढ़ता है, उसी धर्म के अत्यन्त धारण करने से पुत्रादि वर्ग से प्रसिद्ध होता है। वह कौन है कि जिसको विद्वान् लोग सम्पूर्ण दुष्ट मार्गों से बचाकर सुख भोग के कारण शोभन नीति से सन्मार्ग में प्राप्त करते हैं ।१९

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हि ते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०।

भावार्थ—परमेश्वर का उपदेश है, कि विद्वानों! अन्न लाभ के कारण उस रथ को तुम तथा मनन-शील जन संग्राम में रक्षा करो। हे इन्द्र! जो युद्ध का कारण, अहिंसित बैठने के योग्य रथ है, उसी पर आप और आप के सहायक सब आरूढ़ होवें ।२०।

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषुयोनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! सजल निर्जल देश, तथा केवल जल शत्रुवर्जित शस्त्रधारी सेना वन, पुत्रोत्पादक स्त्री गर्भ, इन सब को आप कल्याणार्थ युक्त करें तथा भोगार्थ धन का दान दीजिये ॥ २१ ॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमासो अरणो निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥

ऋ० म० १० । सू० ६३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! आप की दया से जो पृथ्वी, गमनशीलों के अच्छे मार्ग दान में कल्याण स्वरूप, अत्यन्त श्रेष्ठ धन वाली, यज्ञ का आधार भूमि है तथा हमारे सब के गृहरक्षा कारण, वही पृथ्वी रमण करने योग्य देशों के हेतु तथा अपमार्ग में रक्षक सब के शोभन निवास का कारण है॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥

यजु० अ० १ म० १॥

भावार्थ—संसार में प्राणीमात्र सुख के अर्थी हैं सुख बिना, कारण के नहीं होता अतः सुख का कारण प्रथम जानना चाहिये। प्रत्यक्षतः सुख का कारण भोजन आच्छादन है। परन्तु वे कार्य्य पदार्थ हैं, कार्य्य पदार्थ का बिना कारण के होना असम्भव है, अतएव इस मंत्र में कारण पदार्थ का निरूपण

किया जाता है। वेद में तीन प्रकार के विषय हैं, कर्म्म, ज्ञान, उपासना। इन में प्रथम कर्म्मकाण्ड (यज्ञ का वर्णन) सम्पूर्ण कार्य्य पदार्थों का कारण है। (अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते आदित्या-ज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः) १. इसका अर्थ यह है कि अग्नि में हुत पदार्थ सूर्य्य रश्मि द्वारा आदित्य में उपस्थित होता है, आदित्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य से प्रजा, अतएव यज्ञ का करना परोपकार के द्वारा सम्पूर्ण सुखों का मुख्य कारण है। इसी से परमेश्वर ने प्रथम कर्म्मकांड का निरूपण कर पश्चात् ज्ञान उपासना का निरूपण किया है। कर्म चार प्रकार के हैं, १. संसार के विरुद्ध वधबन्धन के हेतु चौर्य्यादि कर्म्म निन्दित हैं २ प्रशंसा के हेतु बन्धु-वर्गादि का पोषण रमणीय है, ३ वापी कूप तड़ाग आदि का बनाना श्रेष्ठ हैं ४ वेद विहित योगादि रूप कर्म्म श्रेष्ठतम हैं अतः वैदिक कर्म्म करने को वेद से परमेश्वर मनुष्यों के लिये विधान करता है। अतएव उचित जानकर, परमदयालु परमेश्वर से जीव-नोपाय की हम सब प्रार्थना करते हैं। उस प्रार्थना

अनुसार परमेश्वर हम सब को श्रेष्ठकर्म्म करने की आज्ञा देता है। इसी वैदिक अग्निष्टोमादि यज्ञ के करने से हम सब को परमेश्वर की प्रा.र्थनानुसार रोग रहित प्रजावाले स्त्री पुत्र पश्वा.दि सकल पदार्थ वृद्धि के कारण उपलब्ध होंगे। और, व्याघ्रादिक पदार्थों से सदैव रक्षित रहेंगे। यज्ञ के साधक यावत् पदार्थ पश्वादिकों की वही परमेश्वर रक्षा करेगा। अतएव इसी परमेश्वर का हम ध्यान करते हैं।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽद-
ब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा
सदमिद्वृधेऽसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥

भावार्थ—हे ईश्वर! अन्य यज्ञों के कारण फल से अनुमित, सर्वतो निर्विघ्न समाप्त, कल्याण कारक यज्ञ वा सङ्कल्पों के हम सब अनुष्ठाता अर्थात् करनेवाले हों। अतएव उक्त कर्म्म का फलदाता परमेश्वर सदैव हम सब अनालसियों का वृद्धिकारक वा रक्षक है॥२५

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬ
रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानाᳬसख्य-
मुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम कर्म करनेवाले विद्वानों की कल्याणकारिणी बुद्धि तथा दानशक्ति भी मुझको दे हम सब उक्त विद्वानों के सखा होकर आप के उपदेशों से चिरजीवी हो आयु को बढ़ावें ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥२६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्थावर जंगम के पति, बुद्धि संतोषक आप हमारे स्वामी हैं । अतएव हम सब रक्षा के लिये आप ही का आह्वान करते हैं (पूषा) पुष्टिकारक ज्ञान वा धन के रक्षक, सर्व पालक, स्वयं अहिंसित आप हमारी वृद्धि वा मंगल के कर्ता हों॥२६

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

भावार्थ—अनन्त कीर्ति युक्त इन्द्र, विश्ववेद वा धन का ज्ञाता, (पूषा अरिष्ट नेमि) अहिंसित मर्यादा

(तात्पर्य) बृहस्पति, देव, पालक इनका वाच्य जो परमेश्वर है, वह हम सब का मंगल करे ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥

यजु० अ० २५। मं० १४।१५।१८।१९।२१॥

भावार्थ—हे जगदीश! आपके कृपाकटाक्ष से कल्याणकारक अनुकूल वाक्यों को सुनें, तथा प्रिय पदार्थों को नेत्रों से देखें, दृढ़ अंग हस्त आदि शरीर से आपकी स्तुति करते हुए, पूर्णायु होकर विद्वानों के समान आपको प्राप्त हों ॥२८॥

२ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये
१ २ २ १ २ ३
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥२९॥

भावार्थ—हे अग्ने, परमेश्वर! आप की मैं प्रार्थना करता हूं। मैंने जो कुछ हवनीय पदार्थ यज्ञ में दान किया है, उसको यथावत् स्वीकार कर, मेरी प्रार्थना को फल-दान से सफल कीजिये ॥२९॥

१ २ २ २ ३ ५ २ ३ २ ३ २
त्वमग्ने यज्ञाना ँ होता विश्वेषा ँ हितः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥

सा० छन्द आ० प्रपा० १ मं० १।२

भावार्थ—हे अग्ने, परमेश्वर ! अग्निष्टोमादिक सम्पूर्ण यज्ञों के आपही हेता अर्थात् उपदेष्टा तथा ऋत्विजों के द्वारा मनुष्यमात्र के, उक्त यज्ञों से, आप ही प्रिय कर्त्ता हैं ॥ ३० ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१

अथर्व० का० १ सू० १ । वर्ग १ अनु० १ । प्रपा० १ मं० १

भावार्थ—पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चप्राण, इक्कीसवां जीव, यही इक्कीस सम्पूर्ण रूपों के धारण पोषण कर्त्ता, सर्वत्र गमन करते हैं, इन सब का स्वामी परमेश्वर है, वही परमेश्वर हमारे सम्पूर्ण शरीरों को सुरक्षित करे ॥ ३१ ॥

इति स्वस्तिवाचनम्

अथ शान्तिप्रकरणम्।

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रा वरुणा रातहव्या। शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥१॥

भावार्थ—हम सब के लिए (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् (अग्नि) व्यापक रक्षा के द्वारा शान्तिदायक हों, यजमानों के हव्य ग्राहक इन्द्र तथा वरुण तथा इन्द्र सोम शान्ति और कल्याण के दायक हों। इन्द्र और पूषा भी युद्ध व अन्न लाभ में सुखद हों ॥१॥

शन्नो भगः शमु नः शन्नो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर सुखद हो, इसीकी कृपा से (भग) ऐश्वर्य, मनुष्यों के उपदेश, अधिक बुद्धिमान्, धन शोभन यथोक्त सत्य का बोधक वचन ये सभी सुखदायक हों ॥२॥

शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शन्नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

भावार्थ-(धाता) जगत् का धारणकर्त्ता (धर्त्ता) तथा विशेष रूपसे धारण पोषणादि करनेवाला परमेश्वर तथा बृहत् (रोदसी) आकाश, अन्न सहित पृथ्वी पर्वत विद्वानों को और हम सब को भलीभांति सुखदायक हों ॥३॥

शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रा वरुणावश्विना शम्। शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥

भावार्थ-ज्योतिप्रधान अग्नि, मित्र, वरुण, द्युलोक, भूलोक सुकृतियों के पुण्य गमनशील वायु परमेश्वर की कृपा से ये सब सुखदायक हों ॥४॥

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शन्न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शन्नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

भावार्थ—सब के कारण द्यौ, भू देखने का कारण अन्तरिक्ष औषधि वृक्ष लोक रक्षक (इन्द्र) सूर्य यह सब परमेश्वर की दया दृष्टि से सुखदायक हों ॥५॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शन्नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

भावार्थ—स्वकीर्तियों से द्योतनादि गुणयुक्त (इन्द्र) सूर्य्य जीवों के सहित शोभन स्तुति युक्त (वरुण) सुखदाता प्राणोंसे (रुद्र) दुःखदायक यज्ञमें विदुषियों के सहित विद्वान परमेश्वर की कृपा से सुखदायक हों और परमेश्वर हमारी स्तुति को श्रवण करे ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः शं नः स्वरूणां मित यो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! सोमस्तोत्र, सोमरस निकासने के पाषाण यज्ञ खम्भों के परिमाण औषधि वेदी यह सब आपकी कृपा से यज्ञ के साधन भूत सुख दायक हों ॥७॥

शं न सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त तेजस्वी सूर्य हम सब के कल्याणार्थ उदय को प्राप्त हों तथा चारों दिशा इढ़तर पर्वत नदी जल यह भी सुखदायक हों॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवंतु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

भावार्थ—शोभन कर्मों से अदिति सर्वात्मक परमेश्वर सुखकारक हों तथा अत्यन्त प्रशस्त महान् व्यापक विष्णु पुष्टिकारक पूषा लोक अन्तरिक्ष जल वायु यह भी शुभकारी हों ॥ ९ ॥

शं नो देव सविता त्रायमाणः शं नो भवंतूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥१०॥

भावार्थ—रक्षक सर्वोत्पादक क्रीड़ादि गुणयुक्त परमेश्वर तथा परमेश्वरीय प्रकाशमान प्रातःकाल, सुखकारी हो सुखोत्पादक दो (क्षेत्रपति) कारणों का कारण ईश तथा मेघ यह प्रजामात्र को सुखदायक हों ॥१०॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवंतु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥११॥

भावार्थ—अत्यन्त स्तुति युक्त देव विद्वान अर्थ सहित परमेश्वरीय वाणी यज्ञकादाता, द्युलोक, भूलोक अन्तरिक्ष में जो उत्पन्न हुए तथा पूर्वोक्त पदार्थ सब सुखदायक हों ॥११॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवंतु शं नो अर्वंतः शमु संतु गावः। शं न ऋभवः सुकृताः सुहस्ताः शं नो भवंतु पितरो हवेषु ॥१२॥

भावार्थ—सत्यवादी अश्व गौ [सुकृती] शोभन हस्तयुक्त विद्वान तथा पूर्वज ये सब हमारी प्रिय वाणी श्रवण कर सुखदायक हों ॥१२॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहि-र्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥

ऋ० मं० ७ सू० ३५ मं० १-१३

भावार्थ—अज एकपात अहिर्बुध्न्य समुद्र उपद्रवों से रक्षक (अपां नपातदेवगोपा) विद्वानों की रक्षा करने वाली पृश्नि अर्थात वायुओं का कारण ये सब सुख दायक हों ॥१३॥

इंद्रो विश्वस्य राजति शं नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

भावार्थ—मननशील प्राणिमात्र सर्वस्वामी परमेश्वर से पुत्र पश्वादिकों के सुख की प्रार्थना करते हैं ॥१४॥

शं नो वातः पवता ७ शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! वायु, सूर्य प्राणिमात्र को सुखदायक हों तथा अत्यन्त गर्जनशील मेघ अच्छी वृष्टि करें ॥ १५ ॥

अह्वानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रति-धीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रा वरुणा रातहव्या । शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे परमदयालो ! आपकी कृपा से रक्षा युक्त दिन रात्रि इन्द्र अग्नि गृहीत हव्य इन्द्र वरुण अन्न दान के सहकारी इन्द्र पूषा कल्याणदाता इन्द्र सोम ये सब रोग भय नाश पूर्वक हम सब के कल्याणकर्ता हों । मन्त्र में इन्द्र शब्द कई बार आया है । इन्द्र से मेघ, सूर्य, जीव अथ राजा का ग्रहण है यथा सम्भव संघटित कर लेना ॥ १६ ॥

शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवंतु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप हमारे रोग भय नाश करते हुए हम सब को पूर्णानन्द प्रदान करो । अथवा आप के बनाये हुए दिव्य गुण विशिष्ट जल वा अन्तरिक्षीय पदार्थ रोग भय नाश पूर्वक सुख साधक हों ॥ १७ ॥

द्यौः शांतिरंतरिक्ष ँ शांतिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः। वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वं ँ शांतिः शांतिरेव शांतिः सामा शांतिरेधि ॥

भाषार्थ—द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, ओषधि, वनस्पति, सम्पूर्ण वेद, ब्रह्म वेद, परमेश्वर, सम्पूर्ण जगत शान्ति और इनका स्वरूप जो शान्ति वा इनमें रहनेवाली जो शान्ति है वह शान्ति परमेश्वर के कृपा कटाक्ष से हम सब को भी उपलब्ध हो ॥१८॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदःशत ँ शृणु-याम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

यजु० अ० ३६। मं० ८।१०।११।१२।१७।२४

भाषार्थ—जो सूर्य सर्व प्रकाशक नेत्र स्थानापन्न भासमान् पूर्व दिशा में अर्थात् पूर्व दिशा का कारण भूत उदय कर्त्ता है, उसका रचनेवाला वा उसका भी

प्रकाशक परमेश्वर अपनी दया दृष्टि से हम सब को सौ वर्ष देखना, जीना, सुनना, कहना इनका सामर्थ्य दे तथा हम सब सौ वर्ष से अधिक पराधीन न हों ॥१६॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

भावार्थ—(जाग्रतः) अनिन्दित पुरुष का जो मन विषय वासना द्वारा दूर देशों में चला जाता है वही प्रकाशक मन सुषुप्त पुरुष के स्वप्न काल में विषय वासना जाल को त्याग कर पुनः अपने नियत स्थान पर आ जाता है अतएव उक्त मन (ज्योतिः) प्रकाशक सम्पूर्ण इन्द्रियों का भी प्रकाशक दूरगामी वही हमारा एक मन सदैव धर्म्मानुष्ठान वा परमेश्वर के ध्यान में संलग्न हो ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वंति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

भाषार्थ—कर्म्म कर्त्ता मनीषी मनको वश करनेवाले ज्ञानवान् विचार पूर्वक जिस मन से यज्ञानुष्ठान करते हैं, वही हमारा मन सम्पूर्ण इन्द्रियों का प्रवर्तक श्रेष्ठ पूजा के अन्तः शरीर में वर्तमान सदैव परमेश्वर के ज्ञान वा धर्मादि शुभ कर्मों में संलग्न हो ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋतेकिञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

भाषार्थ—जो मन चेतः स्वरूप धैर्य्योत्पत्ति का कारण प्रजा वर्ग के अन्तःकरण में मरण धर्म्म रहित प्रकाशित है, जिस मन के बिना कोई भी क्रिया नहीं होती है, वही हमारा मन संसारोच्छेदक ब्रह्मज्ञान वा सुख प्राप्ति के कारण में सन्निविष्ट हो ॥ २२ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

भावार्थ—जिस अमरणधर्म्मा मन ने भूत भविष्यत् वर्तमान काल के सम्पूर्ण पदार्थों का अनुभव किया है तथा सप्त होता साध्य अग्निष्टोम यज्ञ का भी विस्तार किया है, वही हमारा मन सर्वदा धर्म्मादि अनुष्ठान का ईश्वर भक्ति में संलग्न हो ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः सामयजूᳮषि यस्मिंप्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिᳮश्चित्तᳮसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२४॥

भावार्थ—जैसे रथ के चक्र नाभि अर्थात् पहिया के मध्य स्थूल काष्ठ में आस पास डंडे चारों तरफ से छिदे होते हैं वैसे ही मन में ऋक् यजुः साम भी चारों तरफ ओत प्रोत भाव से स्थित हैं। वस्त्र में जिस प्रकार ओत प्रोत भाव से सूत विद्यमान हैं, वैसे ही प्रजाओं के मन में ज्ञान वर्तमान है, वही हमारा मन वेद प्रतिपाद्य शुभ कर्म्म तथा सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप परमेश्वर में संलग्न हो॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभी-

शुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

य० अ० ३४ । मं० १-६ ॥

भावार्थ-जिस प्रकार सारथ्य क्रिया युक्त सारथी अश्वों को बागडोरि के सहारे से वांछित देश को ले जाता है तथा उसी बागडोरि के रथ युक्त अश्वों को जिस तरफ को घुमाना चाहता है उसी तरफ़ को घुमा देता है, वैसे ही अत्यन्त वेगवान हृदिस्थ जरा अवस्था रहित मन रूपी वागडोरि से जीव मन के साथ सम्बद्ध होकर घुमा कर संपूर्ण इन्द्रियरूपी घोड़ों को विषय रूपी सड़कों पर घुमा कर वांछित अर्थ को ग्रहण करता है, वही हम सब का मन परमेश्वर सम्बन्धी श्रवण मनन निदिध्यासन वा (यज्ञ) यागादिशुभ कर्मोंमें सदैव परमेश्वरकी कृपासे अभिरमण करे ।

१ २ ३ २३ ३ १ २र ३ १२ र
स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते

१ २ ३ ३ २
शᳬ राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥

साम० उत्तरार्चिके० प्पा० १ मं ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! प्रकाशमान आप हमारे गौ पुत्र घोड़ा ओषधियों को सुख युक्त करो ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! अन्तरिक्ष द्युलोक भूलोक तथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, अधर इन्हों से हम सब को भय शून्य करो ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५ । ६ ॥

भावार्थ—मित्र शत्रु प्रत्यक्ष दिन रात्रि हम सब को भय शून्य हों तथा सम्पूर्ण दिशाओं से हमारे मित्र हों, शत्रु न हों ॥२८ ॥

॥ इति शान्ति प्रकरणम् ॥

अथ आचमन मन्त्राः।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा

अर्थ-हे (अमृत) सुखप्रद जल ! तू (उपस्तरणम्) प्राणियों का आश्रय भुत (असि) है (स्वाहा) यह हमारा कथन शोभन हो ॥

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा।

अर्थ-हे (अमृत) अमृत तू (अपिधानम्) निश्चय पोषक (असि) है ।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा

अर्थ-(मयि) मुझ में (सत्य) सच्चाई (यशः) कीर्ति (श्रीः) शोभा [श्रीः] लक्ष्मी (श्रयताम्) स्थित हो। ओं यह परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है।

अथ अंग स्पर्श मन्त्राः।

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ।

अर्थ-(मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वाक् इन्द्रिय, सुस्थित (अस्तु) हो ।

ओं नसो में प्राणोऽस्तु ।

अर्थ-(मे) मेरे (नसोः) दोनों नासिका के छिद्रों में (प्राणः) प्राण वायु वा प्राणेन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हों।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।

अर्थ-(मे) मेरे (अक्ष्णोः) नेत्र गोलकों में (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।

अर्थ-(मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय सुस्थित [अस्तु] हो ।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ।

अर्थ-[मे] मेरे [बाह्वोः] दोनों भुजाओं में [बलम्] बल शक्ति [अस्तु] हो ।

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ।

अर्थ-[मे] मेरी [ऊर्वोः] जङ्घाओं में [ओजः] वेग [अस्तु] हो ।

ओं अरिष्टानि मे अंगानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।

अर्थ-[मे] मेरा [तनूः] देह, और [मे तन्वाः] मेरे देह के [अंगानि] अवयव [सह] साथ ही [अरिष्टानि] अनुपहत अबाधित [सन्तु] हों ।

विधि—इन मन्त्रों से दहने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना फिर विधि पूर्वक समिधा चुने ।

अथ हवन मन्त्राः ।

ओं भूर्भुवः स्वः ।

विधि—इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि लाकर अथवा घृत का दीपक जलाकर उससे कर्पूर लगाकर किसी एक पात्र में धर उस में छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठाकर यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे, वह मन्त्र यह है ।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवी-व्वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवी देवयजनी पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥

य० अ० ३ । मं० ५

अर्थ—हे [देवयजनी] विद्वान लोग जिस में यज्ञ करते हैं ऐसी [पृथिवी] पृथिवी [तस्यास्ते] प्रसिद्ध तेरी [पृष्ठे] पीठ पर [भूः भुवः स्वः] पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक में स्थित [भूम्ना, द्यौरिव] नक्षत्रों के बाहुल्य से जैसे आकाश विराजमान है ऐसे ज्वाला बाहुल्य से विराजमान [वरिम्णा, पृथिवीव] अपने बड़प्पन से जैसे पृथिवी सबका आधार है, वैसे सर्वाश्रय भूत [अन्नादम्] यवादि अन्नों को भस्म करने वाले [अग्निम्] अग्नि को [अन्नाद्याय] शुद्ध भक्षण योग्य अन्नोत्पत्ति के लिये [आदधे] मैं यजमान स्थापित करता हूं।

विधि—इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ासा कर्पूर या घी डालकर अगला मन्त्र पढ़कर व्यजन से अग्नि प्रदीप्त करे॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टा-पूर्ते सꣳसृजेथा मयं च। अस्मिन्त्सधस्थे

अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥
य० अ० १५। मं० ५४।

अर्थ—[अग्ने] हे अग्ने तू [उद्बुध्यस्व] प्रकट हो, और [प्रतिजागृहि] सब प्रकाशित हो [अयम्,त्वं च] यह यजमान और तू [इष्टापूर्ते] यज्ञादि कार्य और धर्मार्थ स्थान बनाना आदि शुभ कार्यों को [संसृजेथाम्] उत्पन्न करो [अस्मिन् सधस्थे] इस अग्नि सहित स्थान में तथा [अधिउत्तरस्मिन्]इस से भी उत्तम स्थान में ईश्वर करे कि [विश्वे देवाः] सब विद्वान् लोग [यजमानश्च] और यजमान [सीदत] बैठें।

विधि—जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चंदन की अथवा पलाश आदि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबोकर उन में से एक २ ले नीचे लिखे प्रथम मन्त्र से एक और दूसरे वा तीसरे मंत्र से दूसरी समिधा धरे और चौथे से तीसरी धरे तत्पश्चात्।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते-नेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय। चास्मान् प्रजया

पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥१

इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।

इस मंत्र से एक समिधा अग्नि में डाले।

अर्थ-[जातवेदः] हे अग्ने [अयम्, इध्मः] यह काष्ठ [ते, आत्मा] तेरा आधार है [तेन] इस काष्ठ से [इध्यस्व] प्रदीप्त हो [वर्द्धस्व च] और बढ़ [अस्मान् च] और हम को [इद्धः] बढ़ा हुआ [प्रजया] पुत्रादि से [वर्द्धय] बढ़ा और [पशुभिः] पशुओं से [ब्रह्मवर्चसेन] बड़ी कान्ति से [अन्नाद्येन] अन्न आदि से हमें [सम्, एधय] अच्छे प्रकार बढ़ा [स्वाहा] यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो।

(इदमग्नये, जातवेदसे इदन्न मम) यह दिया हुआ पदार्थ जातवेदा (उत्पन्न हुए सब पदार्थों के साथ सम्बन्ध करनेवाले) अग्नि के लिये है, मेरे लिये नहीं अन्त्य वाक्य का अर्थ सर्वत्र ऐसा ही समझ लेना चाहिये।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।

आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥२॥
इदमग्नये इदन्न मम।

विधि—इस मन्त्र से और अगले से।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतँ तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥३॥
इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम

विधि—इस मन्त्र से अर्थात इन दोनों मन्त्रों से दूसरी धरे।

अर्थ—हे मनुष्यो! (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार जलाये हुए (शोचिषे) दीप्तिवाले, शुद्ध (जातवेदसे) सब में विद्यमान् (अग्नये) अग्नि के लिये (तीव्रं घृतं) सब प्रकार से शुद्ध किये हुए घृत को (जुहोतन) होमो।

ओं तन्त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा।
इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम।

यह तीनों मन्त्र य० अ० ३। मं० १-२।

इस मन्त्र से तीसरी समिधा को धरे।

अर्थ—हे (अङ्गिरः) सब को प्राप्त होनेवाले वा गमनशील अग्ने तम्,त्वा) गार्हपत्य, आहवनीय आदि रूप से प्रसिद्ध तुझ को (सुसमिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घृत से (वर्द्धयामसि) बढ़ावें। हे अग्ने (बृहद्) प्रकाश, छेदनादि गुणों के कारण बड़े और (यविष्ठ्य) अति बलवान् तुम (शोच) प्रकाशित होओ॥

विधि—इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण चांदी कांसा आदि धातु के पात्र में अथवा काष्ठ में वेदी के पास सुरक्षित धरें, ऊपर लिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध आदि पदार्थ सहित पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत, अन्य मोहन भोग आदि जो कुछ सामग्री हो) उन में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे, यही आहुति का प्रमाण है। उस घृत में से चमचा कि जिसमें ६ मासा घृत आवे ऐसा बनवाया हो भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देनी।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते-
नेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय। चास्मान् प्रजया
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥
इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम ।

विधि—तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके हवन कुंड के चारों ओर छिड़कावें । वे मन्त्र निम्न लिखित हैं ।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ।

अर्थ—(अदिते) हे अखण्डनीय परमात्मन् ! आप हमें अहिंसादि सम्पादनार्थ (अनुमन्यस्व) अनुकूल मति दीजिये ।

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ।

अर्थ-(अनुमते) हे अनुगत व्यापक ज्ञानस्वरूप (अनुमन्यस्व) अनुकूल मति दीजिये !

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ।

अर्थ—(सरस्वति) हे प्रशस्त ज्ञानस्वरूप ! (अनुमन्यस्व) अनुकूल मति दीजिये ।

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव

यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

य० अ० ३० मं० १

अर्थ—हे (देव) प्रकाशक (सवितः) सर्वोत्पादक ईश्वर! आप (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (यज्ञम्) शिल्पादि विविध यज्ञों को (प्र,आसुव) उत्पन्न कीजिये और (यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक राजा को (प्र,आसुव) उत्पन्न कीजिये (दिव्यः) शुद्ध (गन्धर्वः) पृथ्वी के धारक (केत,पूः) विज्ञान के पवित्र कर्त्ता हो (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करो और आप (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी हो अतः (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर बनाओ।

विधि—इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावें। इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधान आदि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें। इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उन में से यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञ कुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है। उनका नाम आघारावाज्याहुति

कहते हैं, और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उनको आज्य भागाहुति कहते हैं। सो घृत पात्र में से स्रुवा को भर अंगुष्ठ, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़ कर—

ओं अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम।

अर्थ—(अग्न) प्रकाशक परमात्मा के लिये वा भौतिक अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो।

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय इदन्न मम।

अर्थ—(सोमाय) सोमरसादि के लिये वा परमात्मा की प्रीत्यर्थ (स्वाहा) सुहुत हो!

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापते-इदन्न मम

अर्थ—(प्रजापतये) प्रजाओं के पालक के लिये०।

ओं इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय-इदन्न मम

अर्थ—(इन्द्राय) ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा के लिये०

विधि—इन में से प्रथम से अग्नि के उत्तर भाग में आहुति डालें। द्वितीय मन्त्र से दक्षिण भाग में आहुति डालें तृतीय वा चतुर्थ मन्त्रों से मध्य में आहुति देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम।
ओं भुववर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न
मम । ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमा-
दित्याय इदन्न मम ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यःस्वाहा
इदमाग्नि वाय्वादित्येभ्य इदन्न मम ।

अर्थ-(१) (अग्नि) अग्नि स्वरूप ईश्वर के लिए० ।

(२) (वायु) व्यापक ईश्वर के लिए० ।

(३) आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए० ।

(४) सर्व गुण सम्पन्न ईश्वर के लिए० ।

विधि—यह चार घृत की आहुतियें देकर स्विष्ट
कृत होमाहुति एक ही है । यह घृत की अथवा भात
की देनी चाहिए ।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा
न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्या-
त्सर्वं स्विष्ट सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्ट-

सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुत-
हुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्ध-
यित्रे सर्वान्नः कामान् समर्द्धय स्वाहा ॥
इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम ।

अर्थ-(यत्) जो (अस्य कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरीरिचम्) मैं ने अधिक किया । (यद्वा) अथवा (न्यूनम् इह) यहां थोड़ा (अकरम्) किया गया (सर्वं, स्विष्टम्) सब इष्ट वस्तुओं को (विद्वान्) जानने वाला और (स्विष्टकृत्) अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला (अग्निः) परमात्मा (तत्) उस सब को (मे) मेरे लिए (सुहुतम्) अच्छे प्रकार (करोतु) करे और (स्विष्टकृते) शोभन यज्ञ सम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले (कामानां) इच्छा मात्र (सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनाम्) सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को (समर्द्धयित्रे) बढ़ाने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए (सुहुत हो) हे ईश्वर ! (नः) हमारे (सर्वान् कामान्) अखिल हितकार्यों को (समर्द्धय) बढ़ाओ ।

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम।

अर्थ—[प्रजापतये] इस मन्त्र का अर्थ पूर्व कर आये हैं

विधि—इन मन्त्रों से घृत की चार आहुति करके नीचे लिखे आठ आज्याहुति सर्वत्र मङ्गल कार्य्यों में देवें।

ओं त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्यां—इदन्न मम

अर्थ—हे [अग्ने] प्रकाशमान राजन् तू [विद्वान्] हमारे सब कार्य्यों को जानने वाला है [देवस्य] दिव्य गुणों वाले [वरुणस्य] परमात्मा के [हेडः] अनादर से [त्वम्] तू [नः] हम को [अवयासिसीष्ठाः] पृथक् रख अर्थात् आप ऐसी कृपा करें

सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्ट कृते सुहुत-हुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्ध-यित्रे सर्वान्नः कामान् समर्द्धय स्वाहा ॥
इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम ।

अर्थ-(यत्) जो (अस्य कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरीरिचम) मैं ने अधिक किया । (यद्वा) अथवा (न्यूनम् इह) यहां थोड़ा (अकरम्) किया गया (सर्वं, स्विष्टम्) सब इष्ट वस्तुओं को (विद्वान्) जानने वाला और (स्विष्टकृत्) अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला (अग्निः) परमात्मा (तत्) उस सब को (मे) मेरे लिए (सुहुतम्) अच्छे प्रकार (करोतु) करे और (स्विष्टकृते) शोभन यज्ञ सम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले (कामानां) इष्ट मात्र (सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनाम्) सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को (समर्द्धयित्रे) बढ़ाने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए (सुहुत हो) हे ईश्वर ! (नः) हमारे (सर्वान् कामान्) अखिल हितकाम्यों को (समर्द्धय) बढ़ाओ ।

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम।

अर्थ—[प्रजापतये] इस मन्त्र का अर्थ पूर्व कर आये हैं

विधि—इन मन्त्रों से घृत की चार आहुति करके नीचे लिखे आठ आज्याहुति सर्वत्र मङ्गल कार्य्यों में देवें।

ओं त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्यां—इदन्न मम

अर्थ—हे [अग्ने] प्रकाशमान राजन् तू [विद्वान्] हमारे सब कार्य्यों को जानने वाला है [देवस्य] दिव्य गुणों वाले [वरुणस्य] परमात्मा के [हेडः] अनादर से [त्वम्] तू [नः] हम को [अवयासिसीष्ठाः] पृथक् रख अर्थात् आप ऐसी कृपा करें

जिस से हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें [यजिष्ठः] तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हो और [वह्नितमः] हविरादि उपयोगी पदार्थों के पैदा करने वाले हो [शाशुचानः] अत्यन्त तेज वाले हो, अतः तुम [अस्मद] हम से [विश्वा, द्वेषांसि] सब द्वेष के कारण पापों को [प्रमुमुग्धि] अच्छी तरह से हटाओ ।

ओं स त्वन्नोऽग्नेऽवमोभवोती नेदिष्ठोस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥

इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ।

अर्थ—[अग्ने] हे प्रकाशमान राजन् [स त्वन्नः] पूर्वोक्त गुणों वाला तू (ऊती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भवः) हो और (अस्या उषसः) इस प्रभात काल के (व्युष्टौ) अग्नि होत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो (नः) हमारे (वरुणम्) आचरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने वालों के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृडीकम्) सुख करने वाले हविः शेष भाग का (वीहि)

ओं अयाश्चाग्नेऽस्य नभिशस्तिपाश्च सत्य मित्त्वमयासि। अयानो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजᳫंस्वाहा ॥ इदमग्नये अवसे—इदन्न मम।

अर्थ-[अग्ने]हे भौतिक अग्ने [त्वम्] तुम [अयः] बाहर और भीतर सर्व स्थित [असि] हो [च] और [अनभिशस्तिपाः] जिन का दोष न रहे ऐसे प्रायश्चित्त योग्य पुरुषों के पालक हो [च] और [त्वं] तुम [अया, असि] कल्याण कारक अग्ने, तुम [अयः] हमारे आश्रम होकर यज्ञ के साधन चरु आदि को जलादि देवताओं के लिये [वहासि] ले जाते हो इस लिये [नः] हमारे लिये [भेषजम्] दुःख नाश रूप सुख को [धेहि] देओ ॥६॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥ इदंवरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम।

जिस से हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें [यजिष्ठः] तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हो और [वह्नितमः] हविरादि उपयोगी पदार्थों के पैदा करने वाले हो [शाशुचानः] अत्यन्त तेज वाले हो, अतः तुम [अस्मत्] हम से [विश्वा, द्वेषांसि] सब द्वेष के कारण पापों को [प्रमुमुग्धि] अच्छी तरह से हटाओ।

ओं स त्वन्नोऽग्नेऽवमोभवोती नेदिष्ठोस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥

इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम।

अर्थ—[अग्ने] हे प्रकाशमान् राजन् [स त्वन्नः] पूर्वोक्त गुणों वाला तू (ऊती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो और (अस्या उषसः) इस प्रभात काल के (व्युष्टौ) अग्नि होत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो (नः) हमारे (वरुणम्) आचरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने वालों के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृडीकम्) सुख करने वाले हविः शेष भाग का (वीहि)

ओं अयाश्चाग्नेऽस्य नभिशस्तिपाश्च सत्य मित्त्वमयासि । अयानो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳस्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ।

अर्थ—[अग्ने] हे भौतिक अग्ने [त्वम्] तुम [अयः] बाहर और भीतर सर्व स्थित [असि] हो [च] और [अनभिशस्तिपाः] जिन का दोष न रहे ऐसे प्रायश्चित्त योग्य पुरुषों के पालक हो [च] और [त्वं] तुम [अया, असि] कल्याण कारक अग्ने, तुम अयः हमारे आश्रम होकर यज्ञ के साधन चरु आदि को जलादि देवताओं के लिये [वहसि] ले जाते हो इस लिये [नः] हमारे लिये [भेषजम्] दुःख नाश रूप सुख को [धेहि] देओ ॥६॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥ इदंवरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम।

अर्थ-[वरुण] हे स्वीकार करने योग्य ईश्वर [अस्मत्] हमलोगों से [अधमम्] छोटे और [मध्यमम्] विचले दर्जे के [उत] और [उत्तमम्] ऊंचे दर्जे के [पाशम्] बन्धन को [व्यश्रथाय] अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये [अथ] और (आदित्य) हे अविनाशी ईश्वर (तव, व्रते) तेरे आज्ञा पालन रूपी व्रत में स्थित (वयम्) हम लोग (अनागसः) उपद्रव रहित होकर (अदितये) मुक्ति सुख के लिये (स्याम्) नियत होवें ॥ ७ ॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्ठं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्यां—इदन्न मम ।

अर्थ-(नः) हम लोगों के बीच में (अरेपसौ) पाप रहित (समनसौ) समान मनवाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक (सचेतसौ) समान बुद्धि वाले स्त्री पुरुष (भवतम्) हों और वे दोनों (यज्ञम्) यज्ञ का (मा हिंसिष्टम्) लोप न करें और (मा,

यज्ञपतिम) यज्ञों के पालक को भी पीड़ा न पहुंचावें (अद्य) आज यज्ञ के दिन, ऐसे ही स्त्री पुरुष (नः) हमारे लिये (शिवौ) शान्त रूप (भवतम्) होवें।८।

विधि—सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण हो, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्य्य कर्त्ता जड़ मंद मति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करवावें। पुनः निम्न लिखित मन्त्रों से प्रातःकाल हवन करे।

अथप्रातःकालहविर्दानेके४मन्त्र।

ओं सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा।

अर्थ—(सूर्य्यः) चराचर, सकल संसारका आत्मा सर्व व्यापक परमेश्वर (ज्योतिर्ज्योतिः) चमकने वाले लोकों का भी प्रकाशक है (सूर्य्यः) वह सब के भीतर

स्थित हुआ २ प्राण जीवन का हेतु हो रहा है ऐसे परमात्मा की आज्ञा पालन करके सारे जगत के उपकारार्थ यह हवन करता हूं।

ओं सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

अर्थ-(सूर्य्यः) तेजोमय परमेश्वर (वर्चः) विद्या प्रकाश के देने वाला है (ज्योतिः) जैसे सूर्य्य का प्रकाश एक स्थान पर नहीं रहता, सर्वत्र फैल रहा है। वैसे परमेश्वर (वर्चः) ब्रह्म तेज देने वाला विद्याओं का प्रचार हम से कराने वाला हो।

ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा।

अर्थ-(ज्योतिः) जो ईश स्वयं प्रकाशमय है (सूर्य्यः) और सकल संसार का ईश्वर है। (ज्योतिः) और प्रकाश तथा ऐश्वर्य्य का देने हारा है ऐसे अद्वितीय ब्रह्म की प्रसन्नता के लिये हम प्रेम करते हैं।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा।

अर्थ—[देवेन] प्रकाश डालने वाला [सवित्रा] ब्रह्म बुद्धि से (उषसा+इन्द्रवत्या) सुन्दर ऐश्वर्य्य युक्त रंग बरङ्गी उषा के साथ (सजूः) मिला हुआ (सूर्य्यः) सूर्य्य लोक (सजूः) सर्वत्र समान (जुषाणः) सेवन करता हुआ वा व्याप्त हो कर हवन किये हुए पदार्थों का आनन्द से (वेतु) देश देशान्तरों में पहुंचाने के लिये ग्रहण करे।

अथ सायंकाल आहुति डालने के ४ मंत्र

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥
ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥
ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा।

अर्थ—सूर्य्य के स्थान पर यहां अग्नि शब्द प्रयुक्त किया गया क्योंकि सायंकाल सूर्य्य अस्त होने के बाद यदि कोई ज्योति होती है तो वह भौतिक अग्नि ही होती है।

अथ सायंप्रातः दोनों समय के मंत्र

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ।

इदमग्नये प्राणाय—इदन्न मम ।

अर्थ-[१] अग्नि और प्राण स्वरूप परमात्मा है उसका नाम भूः है। उन्हें हवि देकर आनन्द पूर्वक बुलाता हूं, वह सुखदाई होवें ।

[२] अग्नि स्वरूप परमात्मा प्राण है [प्राणस्य प्राणः] परमेश्वर प्राणों का भी प्राण है और प्राण से प्रिय है उसे हवि देता हूं ।

ओं भुवर्वायवे अपानाय स्वाहा ।

इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम ।

अर्थ-(भुवः) जो वायु तथा अपान है इन दोनों के समान जो हमारे शरीर में से रोग पाप तथा दुष्ट विचार दूर करने वाला बल दाता पिता है उस को नमस्कार हो ।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।
इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ॥

अर्थ—सुख स्वरूप परमात्मा को नमस्कार हो। हम उस आदित्य को जो व्यान के समान है, आहुति देते हैं। मानवी शरीर में जैसे व्यान रसों को सब अङ्गों में ले जाता है, खून को गर्दिश देता है।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम

अर्थ—शरीर में जो पांच प्राण और पांच उपप्राण हैं, संसार के जो तीन लोक भूमि अन्तरिक्ष और द्यौ तथा तीन विद्यायें ऋक् यजुः साम हैं, उन सब का जो अधिपति परमात्मा है, जो कि सारे संसार और उसके पदार्थों से ही प्रकट होता है, उस ईश की स्तुति और पूजा सब लोग करें।

ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।

अर्थ—[आपः] जल के समान सर्वत्र गामी सर्व व्यापक और शान्तिदायक प्रभु है [रसः] जो ईश्वर मन्यु रूप हो कर दुष्टों को दण्ड देने वाला प्रत्येक पदार्थ में रस रूप हो कर विराजमान हो रहा है। (अमृतम्) जो अजर, अमर, अविनाशी, शाश्वत, पुराण, अनादि, अक्षर, अजन्मा, नित्य, शुद्ध, बुद्ध स्वरूप, अनन्त ध्रुव परमात्मा है। ब्रह्म, वृह, वृहि, धातुओं से ब्रह्म शब्द सिद्ध होता है, जो सब के ऊपर विराजमान सब से बड़ा अनन्त बल युक्त परमात्मा है उसे ब्रह्म कहते हैं।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥

अर्थ— [यां] जिस [मेधां] अनेक विद्याओं के धारण करने की शक्ति वाली तत्काल बातों को ग्रहण करने वाली बुद्धि को [देवगणाः] देवता लोग [पितरश्च] पितर लोग [उपासते] धारण करते हैं। [तया, मेधया] उस सात्विकी बुद्धि से [मामद्य] मुझ को आज [अग्ने] प्रकाश प्रदाता परमात्मन् [मेधाविनं] मेधा युक्त [कुरु] कीजिये।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्य-स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ।

इन दोनों मन्त्रों के अर्थ पहिले ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना विषय में कर दिये हैं वहां देख लेवें ।

ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥

अर्थ—सब निश्चय रूप से पूर्ण हो ।

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ बार पढ़ के एक २ करके तीन आहुति देनी ।

इति शुभं भूयात् ।

ऋत्वनुकूल हवन सामग्री ।

बसन्त १—छलीरा, २ तालीस पत्र, ३ पत्रज, ४ दाख ५ लज्जावती, ६ शीतल चीनी, ७ कपूर, ८ चीड, ९ देव-दार, १० गिलोय, ११ अगर, १२ तगर, १३ केसर, १४ इन्द्रजौ, १५ गुग्गुल, १६ कस्तूरी, १७ तीनों चन्दन, १८ जावित्री, १९ जायफल, २० धूप सरल, २१ पुष्कर मूल, २२ कमलगट्टा, २३ मजीठ, २४ वनकचूर, २५ दालचीनी, २६ गुलरका छाल, २७ तेजफल, २८ शङ्खपुष्पी, २९ चिरा-यता, ३० खस, ३१ गोखरू, ३२ खांड, ३३ गोघृत, ३४ ऋतुफल, ३५ भात या मोहनभोग, ३६ जंड समिधा मुशक वाला [चैत्र वैशाख]।

ग्रीष्म—मुरा, वायविडंग, कपूर, चिरोंजी, नागरमोथा पीलाचन्दन, छरीरा, निर्मली, सतावर, खस, गिलोय, धूप दालचीनी, लवंग, कस्तूरी, चन्दन, तगर, भोजपत्र, भात कुशाकी जड, तालीस पत्र, दाख, दारुहल्दी, लालचन्दन मजीठ, शिलारस, केसर, जटामांसी, नेत्रवाला, इलायची बड़ी, उन्नाव, आमले, मूंगके लड्डू, ऋतुफल, चन्दनचूर [ज्येष्ठ आषाढ़]।

वर्षा—काला अगर, पीली अगर, जौ, चीड़, धूपसरल, तगर, देवदारु, गुग्गुल, तपश्चारिणी, राल, जायफल, मुंडी मोथा, निर्मली, कस्तूरी, मखाने, तेजपत्र, कपूर, वनकचूर भात, जटामांसी, छोटी इलायची, वच, गिलोय, तुलसी के बीज, वायविडंग, सफेद हल्दी शहद, चन्दन बेलका गूदा गुग्गुल, नागकेसर, ब्राह्मी, चिरायता, उड़द के लड्डू

छुहारे, सङ्खाहुली, मोचरस, विष्णुक्रांता, ढाक की समिधा गोघृत, खाण्ड, भात ॥ [श्रावण, भाद्रपद]

शरद्–चन्दन सफेद, चन्दन लाल, चन्दन पीला गुग्गुल नागकेसर, इलायची बड़ी, गिलोय, चिरौंजी, विदारी-कन्द, गूलर की छाल, ब्राह्मी, दालचीनी, कपूर, कचरी, मोचरस, पित्तपापड़ा, अगर, भारङ्गी, इन्द्रजौ, रेणुका, मुनक्का, असगन्ध, शीतलचीनी, जायफल, पत्रज, चिरायता केसर, कस्तूरी, किशमिश, खाण्ड, जटामांसी, तालमखाना, सहदेवी, ढाक की समिधा, धान की खील, खीर, विष्णुकान्ता, कपूर, गोघृत, ऋतुफल, [आश्विन कार्तिक

हेमन्त–कुट, मुसली, गन्ध कोकिला, घुड़बाच्छ, पित पापड़ा, कपूर, कपूर कचरी नकछिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दालचीनी, भारङ्गी, सौंफ, मुनक्का, कस्तूरी, चीड़, गुग्गुल, अखरोट, रासना, शहद, पुष्करमूल, केसर, छुहारे गोखरू, कौञ्च के बीज, कांटेदार गिलोय, पर्पटी, बादाम मुलहटी, काले तिल, जावित्री, लाल चन्दन, मुश्क बाला, तालीसपत्र, रेणुका, खोपा, बिना नमक की खिचड़ी, आम या खैर की समिधा, गोघृत, देवदारू, [मार्गशीर्ष पौष]

शिशिर–अखरोट, कचूर, वायबिडंग, राल, मुण्डी, मोचरस, गिलोय, मुनक्का, रेणूका, काले तिल, कस्तूरी तज, केसर, चन्दन, चिरायता, छुहारे, तुलसी के बीज, गुग्गुल, चिरौंजी, काकड़ासींगी, खाण्ड, सतावर, दारू हल्दी, शङ्खपुष्पी, पलास, कौञ्च, के बीज, जटामांसी, भोज पत्र, गुलर, बड़ समिधा, मोहन भोग (कड़ाह) गोघृत [माघ फाल्गुन]